International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 5, September-October, 2026

छोटी खाटू की फूल बावड़ी मारू–गुर्जर स्थापत्य कला और क्षेत्रीय वास्तुकला का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पदमाराम जाखड़

शोधार्थी, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश –

राजस्थान की स्थापत्य परंपरा में बावड़ियाँ केवल जल–संचयन की उपयोगितावादी संरचनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वास, स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में विकसित हुईं। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क भूभाग में जल की उपलब्धता एक प्रमुख पर्यावरणीय चुनौती रही है। इसी कारण यहाँ कुओं, कुंडों, तालाबों और बावड़ियों के निर्माण की समृद्ध परंपरा विकसित हुई। नागौर क्षेत्र की छोटी खाटू स्थित फूल बावड़ी इसी व्यापक जल–वास्तु परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण, किंतु अपेक्षाकृत कम चर्चित उदाहरण है। राजस्थान पर्यटन विभाग के अनुसार छोटी खाटू में स्थित यह प्राचीन बावड़ी फूल बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है और इसके निर्माण को गुर्जर–प्रतिहार काल से संबंधित माना जाता है। इसे स्थापत्य की दृष्टि से एक कलात्मक नमूना भी माना गया है। फूल बावड़ी को केवल एक प्राचीन जल–संरचना के रूप में न देखकर उसे पश्चिमी राजस्थान की क्षेत्रीय वास्तुकला, प्रारंभिक मध्यकालीन स्थापत्य परंपरा और मारू–गुर्जर स्थापत्य के विकासक्रम के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। कला–इतिहास के विद्वानों के अनुसार परिपक्व मारू–गुर्जर शैली का स्पष्ट विकास लगभग 11वीं शताब्दी से राजस्थान और गुजरात में दिखाई देता है, जबकि उसके पूर्ववर्ती रूपों में महा–मरु तथा महा–गुर्जर परंपराओं और गुर्जर–प्रतिहार स्थापत्य का योगदान रहा।

फूल बावड़ी के संदर्भ में उपलब्ध प्रकाशित सामग्री सीमित होने के कारण उसके प्रत्येक स्थापत्य घटक को किसी एक निश्चित शैली में रखना उचित नहीं होगा। फिर भी इसके संभावित काल–संदर्भ, स्थानीय पत्थर–परंपरा, जल–प्रबंधन की आवश्यकता, सीढ़ीदार संरचना तथा नागौर–मारवाड़ क्षेत्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इसे पश्चिमी भारतीय जल–वास्तुकला के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण बनाती है। यह अध्ययन फूल बावड़ी को क्षेत्रीय स्थापत्य निरंतरता, जल–संस्कृति और संरक्षण की दृष्टि से समझने का प्रयास करता है।

संकेताक्षर – फूल बावड़ी, छोटी खाटू, नागौर, गुर्जर–प्रतिहार, मारू–गुर्जर स्थापत्य, बावड़ी, जल–वास्तुकला, राजस्थान, क्षेत्रीय वास्तुकला, मध्यकालीन स्थापत्य।

प्रस्तावना –

राजस्थान की पहचान केवल उसके दुर्गों, महलों और मंदिरों से नहीं होती, बल्कि यहाँ की जल–संरचनाएँ भी उसकी सांस्कृतिक एवं स्थापत्य विरासत का अभिन्न अंग हैं। मरुस्थलीय और अर्ध–मरुस्थलीय क्षेत्रों में जल जीवन का आधार रहा है। वर्षा की अनिश्चितता, भूजल की गहराई तथा गर्म और शुष्क जलवायु ने स्थानीय समाज को ऐसी स्थापत्य तकनीकों को विकसित करने के लिए प्रेरित किया जिनके माध्यम से वर्षा और भूमिगत जल का संरक्षण लंबे समय तक किया जा सके। बावड़ी इसी आवश्यकता से उत्पन्न हुई एक विशिष्ट वास्तु–परंपरा है।

बावड़ी की विशेषता यह है कि इसमें जल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों का प्रयोग किया जाता है। इस कारण जल–स्तर में परिवर्तन होने पर भी मनुष्य जल तक पहुँच सकता था। समय के साथ ये संरचनाएँ केवल जल लेने का स्थान नहीं रहीं, बल्कि सामाजिक संपर्क, धार्मिक अनुष्ठान, यात्रियों के विश्राम तथा स्थानीय सामुदायिक जीवन के केंद्रों में परिवर्तित हो गईं।

राजस्थान में बूंदी, आभानेरी, जोधपुर, अलवर, नागौर, शेखावाटी तथा अन्य क्षेत्रों में अनेक बावड़ियाँ मिलती हैं। इनमें छोटी खाटू की फूल बावड़ी का उल्लेख विशेष रूप से इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उपलब्ध विवरण इसे गुर्जर–प्रतिहार काल से संबंधित मानते हैं। राजस्थान पर्यटन विभाग की आधिकारिक सामग्री में छोटी खाटू को बड़ी खाटू से अलग एक ऐतिहासिक स्थल के रूप में प्रस्तुत किया गया है और यहाँ स्थित पुरानी बावड़ी को "फूल बावड़ी" कहा गया है।

छोटी खाटू का ऐतिहासिक संदर्भ भी इस अध्ययन को महत्त्वपूर्ण बनाता है। उपलब्ध स्थानीय विवरणों में खाटू के प्राचीन नामों तथा पुराने खाटू के दो बस्तियों बड़ी खाटू और छोटी खाटू में विभाजन का उल्लेख मिलता है। छोटी खाटू की पहाड़ी पर किले के अवशेष और क्षेत्र में अन्य प्राचीन धार्मिक एवं स्थापत्य स्थल भी बताए जाते हैं।

इस प्रकार फूल बावड़ी का अध्ययन किसी एक भवन का अध्ययन मात्र नहीं है। यह उस क्षेत्र की जल–व्यवस्था, राजनीतिक इतिहास, धार्मिक संस्कृति, स्थानीय शिल्प परंपरा और स्थापत्य विकास को समझने का माध्यम है।

छोटी खाटू का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य – छोटी खाटू राजस्थान के नागौर क्षेत्र की ऐतिहासिक बस्तियों में से एक है। वर्तमान प्रशासनिक संदर्भ में क्षेत्र डीडवाना–कुचामन जिले से संबंधित है। स्थानीय स्रोतों में छोटी खाटू को ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक रुचि का स्थल बताया गया है। यहाँ खंडिया डूंगर जैसी प्राकृतिक स्थलाकृतियों के साथ कई प्राचीन धार्मिक और स्थापत्य अवशेषों का उल्लेख मिलता है।

राजस्थान राज्य के पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग के निदेशक ने छोटी खाटू में लगभग 9वीं शताब्दी ईस्वी के एक सीढ़ीदार कुएँ की खोज की सूचना दी थी। इस कुएँ की दोनों ओर की दीवारों पर कई शिल्प एवं अभिलेख उत्कीर्ण पाए गए हैं। यह जानकारी सर्वेक्षण विभाग के पश्चिमी मंडल के तकनीकी सहायक श्री एन. एम. गनम द्वारा दी गई थी। कुएँ से संबंधित एक अभिलेख का अध्ययन एवं पाठ–वाचन सर्वेक्षण विभाग के मुख्य अभिलेखविद् द्वारा किया गया। इस अभिलेख से पता चलता है कि इस सीढ़ीदार कुएँ की खुदाई माम्भूमि में की गई थी। अभिलेख की लिपि एवं शैली के आधार पर इसे लगभग 9वीं शताब्दी ईस्वी का माना गया है।

इस खोज का ऐतिहासिक महत्व इसलिए है कि यह राजस्थान में मध्यकालीन जल–संरक्षण व्यवस्था, स्थापत्य–कला तथा तत्कालीन समाज की तकनीकी दक्षता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। सीढ़ीदार कुएँ केवल जल प्राप्त करने के साधन नहीं थे, बल्कि वे तत्कालीन स्थापत्य परंपरा, धार्मिक–सांस्कृतिक गतिविधियों और स्थानीय जनजीवन से भी जुड़े हुए थे। छोटी खाटू का यह कुआँ राजस्थान की प्राचीन जल–प्रबंधन परंपरा और स्थापत्य विरासत का महत्वपूर्ण प्रमाण माना जा सकता है।

खाटू के इतिहास के संबंध में विभिन्न परंपराएँ प्रचलित हैं। कुछ स्थानीय विवरण इसके पुराने नाम को "शतकूप" से जोड़ते हैं, जबकि पृथ्वीराज रासो की परंपरा में "खटवन" नाम का उल्लेख मिलता है। पुराने खाटू के नष्ट होने के बाद बड़ी खाटू और छोटी खाटू के रूप में बस्तियों के अस्तित्व की बात कही जाती है। इन विवरणों को इतिहास के स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार करने के बजाय स्थानीय ऐतिहासिक परंपराओं के रूप में देखना अधिक उचित है।

क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को समझे बिना यहाँ की जल–वास्तुकला को समझना कठिन है। पश्चिमी राजस्थान में वर्षा सीमित और अनियमित है। दूसरी ओर गर्मी के दौरान वाष्पीकरण अधिक होता है। ऐसी परिस्थितियों में भूमिगत जल तक पहुँच और उसका संरक्षण स्थानीय समाज के लिए अत्यंत आवश्यक रहा होगा।

इसी पर्यावरणीय परिस्थिति ने बावड़ी जैसे स्थापत्य रूप को जन्म देने और विकसित करने में भूमिका निभाई। बावड़ी में जल को गहराई में संरक्षित किया जाता था और सीढ़ियों के माध्यम से जल–स्तर तक पहुँचा जाता था। इसलिए इसकी संरचना प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सीधा वास्तु–संवाद स्थापित करती है।

फूल बावड़ी का महत्त्व इसी संदर्भ में बढ़ जाता है। यह केवल एक जलाशय नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का स्थापत्य प्रमाण है जिसमें जल–संरक्षण को सामुदायिक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व माना गया।

राजस्थान में बावड़ी परंपरा का विकास – राजस्थान में जल–संरचनाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। कुएँ, तालाब, कुंड, झालरे और बावड़ियाँ विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में विकसित हुए। बावड़ी इन सभी में विशेष है क्योंकि इसकी स्थापत्य योजना जल की गहराई और जल–स्तर में परिवर्तन के अनुसार उपयोगकर्ता को नीचे उतरने की सुविधा देती है।

सामान्यतः बावड़ी में प्रवेश से जल–कक्ष की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ होती हैं। बड़ी बावड़ियों में अनेक स्तर, मंडप, स्तंभ, छतरियाँ, अलंकरण और विश्राम–स्थल भी विकसित हुए। इस प्रकार उपयोगिता और सौंदर्य का समन्वय बावड़ी वास्तुकला की प्रमुख विशेषता बन गया।

जल–वास्तुकला के अध्ययन में बावड़ी को केवल इंजीनियरिंग संरचना मानना पर्याप्त नहीं है। यह स्थापत्य और सामाजिक इतिहास दोनों का स्रोत है। यहाँ महिलाओं का दैनिक जीवन, यात्रियों की गतिविधियाँ, धार्मिक विश्वास और स्थानीय समुदाय की सहभागिता जुड़ी रही होगी।

राजस्थान की बावड़ियों में क्षेत्रीय भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। बूंदी की बावड़ियाँ अपने बहु–स्तरीय स्थापत्य और सजावटी रूप के लिए प्रसिद्ध हैं। आभानेरी की चाँद बावड़ी अत्यधिक गहराई और ज्यामितीय सीढ़ियों के कारण विशिष्ट है। वहीं छोटी खाटू की फूल बावड़ी अपेक्षाकृत कम चर्चित होने के बावजूद प्रारंभिक जल–वास्तुकला के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

राजस्थान की कला–संस्कृति संबंधी स्रोतों में फूल बावड़ी को छोटी खाटू की बावड़ी के रूप में सूचीबद्ध किया गया है और इसे प्राचीन जल–संरचनाओं में शामिल किया जाता है। कुछ स्रोत इसके साथ 8वीं शताब्दी की नाग–कन्या प्रतिमा का भी उल्लेख करते हैं, यद्यपि इस प्रतिमा और बावड़ी के निर्माण–काल के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने के लिए अधिक पुरातात्त्विक प्रमाण आवश्यक हैं।

गुर्जर–प्रतिहार काल और पश्चिमी भारतीय स्थापत्य – फूल बावड़ी के अध्ययन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसका काल–निर्धारण है। राजस्थान पर्यटन विभाग इसे गुर्जर–प्रतिहार काल में निर्मित माना जाने वाला स्मारक बताता है।

गुर्जर–प्रतिहार काल भारतीय स्थापत्य इतिहास में महत्वपूर्ण संक्रमण और विकास का काल था। राजस्थान में 7वीं–8वीं शताब्दी से मंदिर स्थापत्य के क्षेत्रीय रूपों का विकास दिखाई देने लगता है। आधुनिक कला–इतिहास लेखन में राजस्थान की प्रारंभिक मध्यकालीन स्थापत्य परंपराओं को समझने के लिए महा–मरु, महा–गुर्जर और बाद में विकसित मारू–गुर्जर जैसी संकल्पनाओं का प्रयोग किया गया है।

मधुसूदन अमीलाल ढाकी के अध्ययन के अनुसार मारू–गुर्जर शैली का विशिष्ट एवं परिपक्व रूप लगभग 11वीं शताब्दी के आरंभ में राजस्थान और गुजरात में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसलिए यदि फूल बावड़ी को गुर्जर–प्रतिहार काल की संरचना माना जाए, तो उसे सीधे परिपक्व "मारू–गुर्जर शैली" का उदाहरण कहना कालक्रम की दृष्टि से सावधानी की मांग करता है। अधिक उचित यह होगा कि इसे उस ''पूर्ववर्ती पश्चिमी भारतीय स्थापत्य परंपरा'' के संदर्भ में देखा जाए जिसने आगे चलकर मारू–गुर्जर शैली के विकास में योगदान दिया।

फूल बावड़ी को "मारू–गुर्जर" कहने का आशय केवल 11वीं–13वीं शताब्दी की विकसित मंदिर शैली से समानता स्थापित करना नहीं है, बल्कि राजस्थान की उस क्षेत्रीय स्थापत्य निरंतरता को समझना है जिसमें गुर्जर–प्रतिहार कालीन वास्तु–परंपराएँ बाद के मारू–गुर्जर रूपों की आधारभूमि बनीं।

मारू–गुर्जर स्थापत्य की अवधारणा – मारू–गुर्जर स्थापत्य पश्चिमी भारत की प्रमुख मध्यकालीन स्थापत्य परंपराओं में से एक है। यह राजस्थान और गुजरात में विशेष रूप से विकसित हुई और बाद में जैन तथा हिंदू धार्मिक स्थापत्य में व्यापक रूप से दिखाई दी। विद्वानों के अनुसार इसकी स्पष्ट पहचान 11वीं शताब्दी के आसपास विकसित होती है।

इस शैली की प्रमुख विशेषताओं में अत्यधिक अलंकरण, बाहरी दीवारों पर उभार और अवकाशों का जटिल विन्यास, मूर्तिकला के लिए बनाए गए कोटर, स्तंभों पर सूक्ष्म नक्काशी, सजावटी छतें और जटिल मंडप प्रमुख हैं। पश्चिमी भारतीय मंदिरों में बलुआ पत्थर तथा संगमरमर का व्यापक प्रयोग हुआ।

मारू–गुर्जर स्थापत्य की जड़ें पूर्ववर्ती स्थापत्य परंपराओं में खोजी जाती हैं। आधुनिक कला–इतिहास में महा–मरु और महा–गुर्जर को इसके प्रमुख पूर्ववर्ती रूपों के रूप में देखा गया है। महा–मरु में राजस्थान की प्रारंभिक क्षेत्रीय परंपराओं का प्रभाव और महा–गुर्जर में गुजरात तथा दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्रों की स्थापत्य विशेषताएँ दिखाई देती हैं। इन दोनों के संपर्क और विकास से बाद में अधिक परिपक्व मारू–गुर्जर शैली विकसित हुई।

यह स्थापत्य केवल मंदिरों तक सीमित नहीं था। पश्चिमी भारत की जल–संरचनाओं में भी सजावटी और संरचनात्मक तकनीकों का विकास हुआ। एक आधुनिक अध्ययन के अनुसार राजस्थान और गुजरात की जल–संरचनाओं में नागर स्थापत्य तथा पश्चिमी भारतीय स्थापत्य परंपराओं के अनेक तत्वों का प्रभाव दिखाई देता है।

इस दृष्टि से फूल बावड़ी का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यहाँ मंदिर वास्तुकला की तरह प्रत्यक्ष शिखर या गर्भगृह नहीं है। फिर भी यह उसी क्षेत्रीय निर्माण–संस्कृति, पत्थर–शिल्प और जल–वास्तु की व्यापक परंपरा से संबंधित हो सकती है।

फूल बावड़ी की स्थापत्य विशेषताएँ – छोटी खाटू की फूल बावड़ी के संबंध में विस्तृत प्रकाशित वास्तु–मापन, विस्तृत पुरातात्त्विक रेखांकन और वैज्ञानिक उत्खनन संबंधी सामग्री सार्वजनिक रूप से सीमित दिखाई देती है। इसलिए इसके प्रत्येक स्थापत्य तत्व का निश्चित विवरण देना उचित नहीं होगा। उपलब्ध स्रोत इसे एक पुरानी, कलात्मक बावड़ी बताते हैं और इसके निर्माण को गुर्जर–प्रतिहार काल से संबंधित मानते हैं।

''छोटी खाटू की बावड़ी'' की ऐतिहासिक, स्थापत्यिक और कलात्मक विशेषताओं का सुंदर वर्णन किया गया है। लेखक के अनुसार यह बावड़ी अपनी प्राचीनता और स्थापत्य–कला के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह राजस्थान की प्राचीन जल–संरक्षण परंपरा तथा तत्कालीन वास्तुकला की उत्कृष्टता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बावड़ी का निर्माण मरुभूमि जैसे जल–संकट वाले क्षेत्र में करवाया गया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समाज जल को केवल आवश्यकता नहीं, बल्कि जीवन और संस्कृति के महत्वपूर्ण आधार के रूप में देखता था।

बावड़ी में प्रवेश करते ही इसके विशाल आकार और कलात्मकता का अनुभव होता है। इसके बाएँ भाग में जटाजूटधारी शिव की प्रतिमा तथा एक आयताकार शिलापट्ट पर लेख उत्कीर्ण है। इस लेख की नौ पंक्तियाँ कुटिल लिपि में लिखी गई हैं और इसे नौवीं शताब्दी ईस्वी का माना जाता है। यह अभिलेख बावड़ी की प्राचीनता का महत्वपूर्ण प्रमाण है। अभिलेख से यह भी जानकारी मिलती है कि मरुभूमि में इस बावड़ी का निर्माण कराया गया था। इससे तत्कालीन शासकों और समाज की जल–संरक्षण संबंधी दूरदर्शिता का पता चलता है।

इस बावड़ी की स्थापत्य योजना भी अत्यंत आकर्षक है। इसमें तीन मंजिला भवन निर्मित था। दो ओर घटपल्लव से युक्त सुंदर अर्धस्तंभ दिखाई देते हैं। इनके मध्य भाग में दोनों ओर तथा घटपल्लव से अलंकृत विशालकाय स्तंभों के बीच कलात्मक रथिकाएँ बनाई गई हैं। इन रथिकाओं पर सुंदर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बावड़ी का उद्देश्य केवल जल प्राप्त करना नहीं था, बल्कि उसे कलात्मक और धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाया गया था।स्तंभों के निचले भाग पर द्वारपाल तथा मकरवाहिनी गंगा और कच्छपवाहिनी यमुना की प्रतिमाएँ अंकित हैं। भारतीय धार्मिक परंपरा में गंगा और यमुना को पवित्र नदियों के रूप में विशेष स्थान प्राप्त है। इसलिए इनकी प्रतिमाओं का बावड़ी में अंकित होना जल की पवित्रता और धार्मिक महत्त्व को दर्शाता है। रथिकाओं की द्वारशाखाएँ भी पत्रवल्ली से अलंकृत हैं, जो प्राचीन भारतीय स्थापत्य–कला की सूक्ष्म सज्जा का परिचय देती हैं। रथिकाओं का ऊपरी भाग शिखराकार है, जिसके कारण उनका स्वरूप मंदिर जैसा प्रतीत होता है।

छोटी खाटू की बावड़ी इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय समाज ने जल–संरक्षण की आवश्यकता को समझते हुए उपयोगिता के साथ सौंदर्य और धार्मिक आस्था को भी जोड़ा था। इसकी स्थापत्य योजना, अभिलेख और मूर्तियाँ तत्कालीन कला–कौशल तथा सांस्कृतिक समृद्धि की परिचायक हैं। अतः छोटी खाटू की बावड़ी राजस्थान की ऐतिहासिक धरोहर और प्राचीन भारतीय स्थापत्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण मानी जा सकती है।

सीढ़ीदार योजना – बावड़ी की मूल पहचान ही उसकी सीढ़ीदार योजना है। सीढ़ियाँ जलाशय की ओर नीचे जाती हैं और जल–स्तर घटने–बढ़ने के बावजूद जल तक पहुँच उपलब्ध कराती हैं। यह योजना जल–संचयन और मानव उपयोग के बीच वास्तु–संतुलन स्थापित करती है।

फूल बावड़ी के संदर्भ में यह सीढ़ीदार व्यवस्था उस क्षेत्र की पर्यावरणीय आवश्यकता से जुड़ी हुई प्रतीत होती है जहाँ जल की उपलब्धता मौसमी और अनिश्चित रही होगी।

भूमिगतता और तापमान – बावड़ी की गहराई केवल जल प्राप्त करने के लिए नहीं थी। भूमिगत या अर्ध–भूमिगत स्थान गर्म जलवायु में अपेक्षाकृत ठंडा वातावरण भी उपलब्ध कराता था। इस प्रकार बावड़ी एक सूक्ष्म जलवायु–क्षेत्र के रूप में कार्य कर सकती थी।

राजस्थान की वास्तुकला में पर्यावरण के अनुसार भवनों की संरचना करना एक सामान्य विशेषता रही है। मोटी पत्थर की दीवारें, गहरे आंतरिक भाग और छायादार स्थान तापमान नियंत्रण में सहायता करते थे।

पत्थर का उपयोग – छोटी खाटू के स्थानीय विवरणों में क्षेत्र के पत्थर और पीले बलुआ पत्थर के उपयोग की परंपरा का उल्लेख मिलता है। स्थानीय पत्थर से भवन निर्माण और नक्काशी की परंपरा इस क्षेत्र की स्थापत्य पहचान का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रही है।

पश्चिमी भारतीय स्थापत्य में बलुआ पत्थर का प्रयोग व्यापक रहा। मारू–गुर्जर स्थापत्य के अध्ययन में भी बलुआ पत्थर और संगमरमर प्रमुख निर्माण सामग्रियों के रूप में उल्लेखित हैं।

इसलिए फूल बावड़ी की निर्माण सामग्री को स्थानीय भूगोल और क्षेत्रीय शिल्प–परंपरा से जोड़कर देखना उपयुक्त है।

हालाँकि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कहना कठिन है कि इसकी सजावट परिपक्व मारू–गुर्जर मंदिर स्थापत्य की तरह व्यापक मूर्तिकला से युक्त थी। इसलिए यहाँ "मारू–गुर्जर प्रभाव" को प्रत्यक्ष शैलीगत समानता के बजाय क्षेत्रीय शिल्प–परंपरा की निरंतरता के रूप में देखना अधिक उपयुक्त होगा।

जल–वास्तुकला और सामाजिक जीवन – बावड़ी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने जल और समाज के बीच एक वास्तु–आधारित संबंध स्थापित किया। जल प्राप्त करना दैनिक जीवन का अनिवार्य कार्य था, इसलिए बावड़ी सामाजिक संपर्क का स्वाभाविक स्थान बन गई।

राजस्थान के ग्रामीण एवं कस्बाई समाज में महिलाओं की जल–संग्रहण भूमिका के कारण बावड़ियाँ सामाजिक अनुभव का विशेष स्थल रही होंगी। जल लेने के दौरान बातचीत, धार्मिक विश्वास, लोकगीत और सामुदायिक संपर्क विकसित होते थे।

बावड़ियों का उपयोग यात्रियों और राहगीरों के लिए भी महत्त्वपूर्ण रहा। प्रमुख मार्गों के समीप निर्मित जल–संरचनाएँ यात्रियों को पानी और विश्राम उपलब्ध कराती थीं। छोटी खाटू जैसे ऐतिहासिक मार्ग–संबंधित क्षेत्र में इस प्रकार की संरचना का अस्तित्व स्थानीय जल–आधार और आवागमन दोनों से संबंधित हो सकता है।

इसके अतिरिक्त बावड़ी धार्मिक जीवन से भी जुड़ सकती थी। जल भारतीय धार्मिक संस्कृति में शुद्धि, पवित्रता और जीवन का प्रतीक रहा है। इसलिए अनेक जल–संरचनाएँ मंदिरों और धार्मिक स्थलों के निकट विकसित हुईं।

फूल बावड़ी के संदर्भ में नाग–कन्या जैसी प्रतिमा के उल्लेख से भी जल और लोक–धार्मिक प्रतीकवाद की संभावना सामने आती है, हालांकि इस प्रतिमा की मूल स्थिति, तिथि और बावड़ी के साथ उसका संबंध स्वतंत्र पुरातात्त्विक प्रमाणों द्वारा स्थापित किया जाना आवश्यक है।

फूल बावड़ी और क्षेत्रीय वास्तुकला –

फूल बावड़ी का वास्तविक स्थापत्य महत्त्व उसके क्षेत्रीय संदर्भ में अधिक स्पष्ट होता है। छोटी खाटू नागौर–मारवाड़ सांस्कृतिक क्षेत्र का हिस्सा है। इस क्षेत्र में शुष्क जलवायु, स्थानीय पत्थर, व्यापारिक गतिविधियाँ और धार्मिक परंपराएँ स्थापत्य निर्माण को प्रभावित करती रही हैं।

क्षेत्रीय वास्तुकला का अर्थ किसी एक निश्चित शैली की नकल नहीं है। यह स्थानीय संसाधनों, जलवायु, तकनीक, सामाजिक आवश्यकताओं और सांस्कृतिक प्रतीकों के सम्मिलित परिणाम से बनती है। फूल बावड़ी को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है –

''पहला, पर्यावरणीय स्तर'' – जल की कमी और भूमिगत जल तक पहुँच ने सीढ़ीदार जल–संरचना की आवश्यकता पैदा की।

''दूसरा, तकनीकी स्तर'' – पत्थर का उपयोग, गहराई, सीढ़ियों की व्यवस्था और जलाशय का निर्माण स्थानीय निर्माण–कौशल को प्रदर्शित करता है।

''तीसरा, सांस्कृतिक स्तर'' – जल को सामुदायिक और धार्मिक महत्व प्राप्त होने के कारण बावड़ी सामाजिक जीवन का हिस्सा बनी।

मारू–गुर्जर मंदिरों में बाहरी सतहों पर जटिल प्रक्षेप, मूर्तिकला, अलंकृत स्तंभ, मंडप और अत्यंत सूक्ष्म सजावटी तत्व मिलते हैं।

इसके विपरीत बावड़ी का प्राथमिक उद्देश्य जल–संचयन और जल तक पहुँच सुनिश्चित करना है। इसलिए इसकी वास्तु–योजना मंदिर से मूलतः अलग होती है।

फिर भी दोनों में कुछ व्यापक स्थापत्य संबंध दिखाई दे सकते हैं –

1. ''स्थानीय पत्थर का उपयोग।''
2. ''शिल्पकारों की नक्काशी परंपरा।''
3. ''ज्यामितीय योजना।''
4. ''सीढ़ियों और स्तरों का स्थापत्य प्रयोग।''
5. ''उपयोगिता और सौंदर्य का समन्वय।''
6. ''धार्मिक–सांस्कृतिक प्रतीकों का संभावित प्रयोग।''

मारू–गुर्जर शैली का परिपक्व विकास 11वीं शताब्दी से माना जाता है। अतः यदि फूल बावड़ी का निर्माण वास्तव में गुर्जर–प्रतिहार काल में हुआ था, तो वह परिपक्व मारू–गुर्जर शैली से पहले की स्थापत्य परंपरा का प्रतिनिधित्व करेगी।

फूल बावड़ी का कला–ऐतिहासिक महत्त्व – यह पश्चिमी राजस्थान की जल–वास्तु परंपरा को समझने में सहायता करती है। इसका संभावित गुर्जर–प्रतिहार कालीन संबंध इसे प्रारंभिक मध्यकालीन वास्तु इतिहास से जोड़ता है। यह हमें यह समझने का अवसर देती है कि मंदिरों के अतिरिक्त जल–संरचनाएँ भी क्षेत्रीय स्थापत्य शैली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

भारतीय स्थापत्य इतिहास में मंदिरों पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है, जबकि जल–वास्तुकला पर तुलनात्मक रूप से कम चर्चा होती है। जबकि जल–संरचनाएँ किसी क्षेत्र के सामाजिक और पर्यावरणीय इतिहास का प्रत्यक्ष प्रमाण होती हैं।

फूल बावड़ी जैसे स्थल यह भी बताते हैं कि स्थापत्य केवल राजमहलों और धार्मिक भवनों की कला नहीं थी। आम जनजीवन की आवश्यकताओं के लिए निर्मित संरचनाएँ भी अपने समय की तकनीकी दक्षता और सौंदर्यबोध को प्रदर्शित कर सकती हैं।

छोटी खाटू की सांस्कृतिक विरासत और फूल बावड़ी – छोटी खाटू में फूल बावड़ी के अतिरिक्त अन्य प्राचीन धार्मिक और स्थापत्य स्थलों का भी उल्लेख मिलता है। स्थानीय विवरणों में स्वाध्याय बावड़ी, प्राचीन मंदिर तथा अन्य धार्मिक स्थलों को क्षेत्र की विरासत का हिस्सा बताया गया है।

सांस्कृतिक परिदृश्य की अवधारणा में किसी एक भवन के साथ उससे जुड़े प्राकृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक तत्वों को भी शामिल किया जाता है। छोटी खाटू की पहाड़ी, किले के अवशेष, मंदिर, बावड़ियाँ और बस्ती ये सभी मिलकर क्षेत्र की ऐतिहासिक पहचान निर्मित करते हैं। इस प्रकार फूल बावड़ी की वास्तविक विरासत–मूल्य उसके स्थापत्य रूप से आगे बढ़कर पूरे स्थानीय सांस्कृतिक परिदृश्य में निहित है।

संरक्षण की आवश्यकता – फूल बावड़ी जैसी ऐतिहासिक संरचनाएँ वर्तमान समय में अनेक चुनौतियों का सामना करती हैं। शहरी विस्तार, अतिक्रमण, कचरा, जल–निकासी में परिवर्तन, पत्थरों का क्षरण, वनस्पति की वृद्धि तथा रखरखाव का अभाव इनके संरक्षण को प्रभावित कर सकता है।

जल–संरचनाओं के संरक्षण में केवल पत्थर की मरम्मत पर्याप्त नहीं है। बावड़ी का मूल चरित्र उसके जल–तंत्र से जुड़ा होता है। यदि बावड़ी संरचनात्मक रूप से बची रहे लेकिन उसमें जल–प्रवाह और जल–संचयन की व्यवस्था समाप्त हो जाए, तो उसका मूल कार्यात्मक स्वरूप नष्ट हो जाता है।

पर्यटन और विरासत–पर्यटन की संभावनाएँ – राजस्थान पहले से ही दुर्गों, महलों, मंदिरों और हवेलियों के लिए प्रसिद्ध है। यदि जल–वास्तुकला को पर्यटन के व्यापक परिदृश्य में जोड़ा जाए तो छोटी खाटू जैसे स्थानों को भी नई पहचान मिल सकती है।

फूल बावड़ी को नागौर क्षेत्र की अन्य ऐतिहासिक संरचनाओं के साथ जोड़कर एक क्षेत्रीय विरासत–पथ विकसित किया जा सकता है। ऐसा विरासत–पथ केवल पर्यटकों के लिए आकर्षक नहीं होगा, बल्कि स्थानीय समुदाय के लिए रोजगार और सांस्कृतिक जागरूकता का माध्यम भी बन सकता है।

पर्यटन विकास करते समय स्मारक की प्रामाणिकता और पर्यावरणीय संवेदनशीलता को प्राथमिकता देनी चाहिए। अत्यधिक व्यावसायीकरण से स्मारक की ऐतिहासिक प्रकृति प्रभावित हो सकती है।

फूल बावड़ी के लिए सूचना–पट्ट, स्थानीय इतिहास की संक्षिप्त जानकारी, स्थापत्य की व्याख्या और डिजिटल फत आधारित सामग्री विकसित की जा सकती है। इससे आगंतुकों को यह समझने में सहायता मिलेगी कि बावड़ी केवल "पुरानी इमारत" नहीं, बल्कि राजस्थान की जल–संस्कृति और स्थापत्य इतिहास का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन – फूल बावड़ी के संबंध में उपलब्ध सामग्री का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर एक महत्त्वपूर्ण समस्या सामने आती हैकृइस स्मारक पर विस्तृत अकादमिक एवं पुरातात्त्विक अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है।

एक ओर राजस्थान पर्यटन विभाग इसे गुर्जर–प्रतिहार काल से संबंधित और कलात्मक बावड़ी के रूप में प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर विस्तृत वास्तु–विश्लेषण, निर्माण–तिथि, शिलालेख, मूल संरचनात्मक योजना और चरणबद्ध निर्माण के संबंध में सार्वजनिक स्रोतों में पर्याप्त जानकारी नहीं मिलती।

विशेष रूप से "मारू–गुर्जर" शब्द के प्रयोग में सावधानी अपेक्षित है। विद्वानों के अनुसार इस शैली का परिपक्व स्वरूप 11वीं शताब्दी में उभरता है। इसलिए इससे पूर्व की संरचना को सीधे उसी शैली का उत्पाद कहना ऐतिहासिक कालक्रम को सरल बना देना होगा।

इसके स्थान पर फूल बावड़ी को पश्चिमी भारतीय स्थापत्य की दीर्घकालीन परंपरा के अंतर्गत देखना अधिक उपयुक्त है, जिसमें गुर्जर–प्रतिहार कालीन वास्तु–प्रयोगों से लेकर बाद की मारू–गुर्जर शैली तक निरंतर विकास दिखाई देता है।

निष्कर्ष –

छोटी खाटू की फूल बावड़ी राजस्थान की जल–वास्तुकला और क्षेत्रीय स्थापत्य इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इसका महत्त्व केवल इस तथ्य में नहीं है कि यह एक पुरानी बावड़ी है, बल्कि इसमें पश्चिमी राजस्थान के पर्यावरण, समाज, जल–प्रबंधन और शिल्प परंपरा का समन्वय दिखाई देता है।

उपलब्ध आधिकारिक पर्यटन विवरण इसे गुर्जर–प्रतिहार काल से संबंधित मानते हैं और स्थापत्य की दृष्टि से कलात्मक नमूना बताते हैं। इस आधार पर फूल बावड़ी को राजस्थान की प्रारंभिक मध्यकालीन जल–वास्तुकला के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।

हालाँकि इसे सीधे परिपक्व मारू–गुर्जर स्थापत्य का उदाहरण मानना कालक्रम की दृष्टि से उचित नहीं होगा। कला–इतिहास संबंधी अध्ययनों में मारू–गुर्जर शैली का स्पष्ट और परिपक्व विकास लगभग 11वीं शताब्दी में राजस्थान और गुजरात में दिखाई देता है। इसके पूर्व महा–मरु, महा–गुर्जर और गुर्जर–प्रतिहार परंपराएँ इसके विकास की पृष्ठभूमि तैयार करती हैं।

अतः फूल बावड़ी को ''मारू–गुर्जर स्थापत्य की व्यापक क्षेत्रीय परंपरा की पूर्वपीठिका और पश्चिमी भारतीय जल–वास्तुकला की निरंतरता'' के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

फूल बावड़ी यह भी सिद्ध करती है कि राजस्थान की वास्तुकला को केवल दुर्गों और मंदिरों तक सीमित करके नहीं समझा जा सकता। जल–संरचनाएँ भी उसी सभ्यता और शिल्प–बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसने राजस्थान के कठोर पर्यावरण में जीवन को संभव बनाया।

इस बावड़ी के संरक्षण, वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण और विस्तृत पुरातात्त्विक अध्ययन की आवश्यकता है। यदि इसके निर्माण–काल, शिलालेख, वास्तु–योजना, मूर्तिकला और जल–तंत्र पर व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है, तो यह राजस्थान की प्रारंभिक मध्यकालीन जल–वास्तुकला के इतिहास में अधिक स्पष्ट स्थान प्राप्त कर सकती है।

संदर्भ सूची –

1. ''धाकी, मुनि अमरचंद्र'', 'मारू–गुर्जर मंदिर स्थापत्य की उत्पत्ति एवं विकास', भारतीय मंदिर स्थापत्य के अध्ययन से संबंधित ग्रंथ।
2. ''राय, कृष्णदेव'', 'राजस्थान का स्थापत्य एवं कला', राजस्थान की स्थापत्य एवं कलात्मक परंपराओं का अध्ययन।

3. ''शर्मा, दशरथ'', 'राजस्थान का इतिहास', राजस्थान के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन।
4. ''सिंह, रामवल्लभ'', 'राजस्थान की स्थापत्य कला', राजस्थान के विभिन्न स्थापत्य रूपों एवं निर्माण परंपराओं का अध्ययन।
5. ''मिश्र, प्रभाकर'', 'भारतीय स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला', भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन।
6. ''जोशी, वीरेन्द्रनाथ'', 'राजस्थान की कला एवं संस्कृति', राजस्थान की कला, संस्कृति, लोक परंपराओं एवं स्थापत्य का परिचय।
7. ''गुप्त, रतनलाल'', 'राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास', राजस्थान की सांस्कृतिक परंपराओं एवं ऐतिहासिक विरासत का अध्ययन।
8. ''शर्मा, गोपीनाथ'', 'राजस्थान के इतिहास के स्रोत', राजस्थान के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्रोतों का विवेचन।
9. ''व्यास, रामनाथ'', 'राजस्थान की प्राचीन कला', राजस्थान की प्राचीन स्थापत्य, मूर्तिकला एवं कला परंपराओं का अध्ययन।
10. ''भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण'', 'राजस्थान के प्राचीन स्मारक एवं स्थापत्य', राजस्थान की पुरातात्त्विक एवं स्थापत्य विरासत का विवरण।
11. ''राजस्थान सरकार, पर्यटन विभाग'', 'राजस्थान के ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थल', राजस्थान के प्रमुख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं स्थापत्य स्थलों का विवरण।
12. गनम, एन. एम., सर्वेक्षण विभाग के पश्चिमी मंडल के तकनीकी सहायक, भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन।